भीड़ के आदमी का हक

.....लीना मेहेंदळे

बचपन की एक कहानी ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। एक ग्रामीण अपना बैल बेचने के लिए बड़े गांव के बाजार ले गया। बाजार की गुंडागर्दी और दलाली से वह अपरिचित था। अचानक एक मुस्टंड आदमी चालबाजी कर रहा है, लेकिन बैल को उससे छुड़ाने का कोई तरीका नहीं सूझता था। तभी अचानक भीड़ के एक आदमी ने अपनी पगड़ी खोली और बैल के मुंह पर डाल दी और फिर उस मुस्टंडे से कहा कि अच्छा बताओ तुम्हारे बैल की कौन-सी आंख में जख्म है, दाहिनी या बाईं? चालबाज आदमी को तत्काल कोई जबाव नहीं सूझा, उसने फिर भी कहा-दाहिनी, लेकिन शायद, बाईं भी हो, मुझे याद नहीं आ रहा। फिर भीड़ के अदमी ने पहले व्यक्ति से पूछा तो उसने कहा-मेरे बैल में कोई दोष नहीं है, उसकी दोनों आँखें अच्छी हैं। कपड़ा हटाया गया तो सबने देखा कि बैल की आंखें सही सलामत थीं। इस तरह दूध का दूध और पानी का पानी हो गया। एक गरीब व्यक्ति को न्याय मिल गया और लोगों को भी विश्वास हुआ कि हां, न्याय हुआ है।

इस कहानी का महत्व यह है कि उचित न्याय प्रक्रिया के लिए उचित और दिमागी सूझबूझ वाले प्रश्न का हक एक सामान्य 'भीड़ के आदमी ' के पास भी था, जैसा कि होना चाहिए। लेकिन आज हमारी पुलिस अन्वेषण की प्रक्रिया में या अदालत की न्यायदान की प्रक्रिया में भी बाहरी आदमी की सूझबूझ को कोई स्थान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि कोई मामला चाहे कितना ही गंभीर क्यों न हो - जैसे प्रियदर्शिनी मट्टू का केस, अंजू इलियासी का केस या मुंबई का रमेश किणी हत्या का केस, उनकी जांच-पडताल में सामान्य आदमी को अपना योगदान देने का हक नहीं होता, न ही उसके सुझावों का स्वागत होता है।

गुनाहों की जांच और न्याय प्रक्रिया में सामान्य आदमी की सूझबूझ को उजागर करने वाले कुछ माननीय लेखक और पात्र रहे हैं: आर्थर कानन डायल का पात्र शरलॉक होम्स, अर्ल स्टेनली गार्डनर का पात्र पेरी मैसन, अगाथा क्रिस्टी की पात्र मिस मेपल और जाने माने साइंस फिक्शन लेखक आइजैक असिमोव के अनेक पात्र। इन रचनाओं से पश्चिमी समाज में सामान्य व्यक्ति की सूझबूझ को मिलनेवाले सम्मान और हक का अंदाज लगाया जा सकता है। लेकिन भारत में गुलामी के दो सौ वर्षों के इतिहास में यही मनोवृत्ति बन गई थी कि 'माई-बाप सरकार न्याय करेगी।' इस मनोभाव से हम अभी उबरे नहीं हैं। हम यानी सरकार। सरकार अब भी कहती है कि हम ही माई बाप हैं, जांच और न्याय हम ही करेंगे। तुम्हें अपनी सूझबूझ दिखाने का दिमाग खपाने की कोई जरूरत नहीं। तुम विश्राम करो।

फिर भी अपने हठ से विवश मैं भीड़ के एक सामान्य जन की हैसियत से एक सवाल जांच एजंसियों से पूछना चाहती हूं - अंजू इलियासी के मामले में। अखबारी रिपोर्टों में लिखा है कि अंजू के पेट में दो या तीन बार छुरा भोंका गया था। मैंने पढ़ा है कि आत्महत्या के मूड में आवेशित व्यक्ति एक बार तो अपने आपको पूरी ताकत से छुरा भोंक सकता है, लेकिन सवाल दूसरे और तीसरे वार का है। पहले वार की तीव्रता के कारण जो मानसिक, आघात, जो दर्द और जो खून का बहाव शुरू होता है, उसके बाद भी क्या किसी व्यक्ति का दिमाग इतना दृढ़ रह सकता है कि उसके हाथ छुरे को खींचकर बाहर निकालें और उन हाथों में फिर भी इतनी ताकत बाकी हो कि वे जानलेवा आवेग से दुबारा पेट में छुरा भोंक सकें?

करीब पचास वर्ष पहले तक जापान में हाराकिरी अर्थात अपने ही पेट में छुरा घोंप कर आत्महत्या करने का रिवाज था। इसे एक 'रिचुअल' के रूप में किया जाता था। हाराकिरी करने वाला अपने आपको ध्यान और प्राणायाम के माध्यम से आघात करने के लिए पूरी तरह से तैयार कर लेता था ताकि एक ही वार में उसका काम तमाम हो जाए। क्या हमारे मनोवैज्ञानिकों ने ऐसा पढ़ा या पाया है कि कोई व्यक्ति एक सशक्त वार के बावजूद मरने के लिए अपने आप पर दूसरा और तीसरा सशक्त वार भी कर सकता है? मुझे संदेह है । लेकिन यदि कहीं पुराने केसों की फाइलों में इस संदेह का यह उत्तर नोट किया गया हो या यदि यह सवाल अनुत्तरित हो तो सामान्य जन को इसकी जानकारी मिलनी चाहिए।